प्रयोग सर्वथा निषिद्ध ही माना जाये।

इस प्रकार विशिष्ट नियंत्रणों के साथ ही वाहन प्रयोग और विदेश यात्रा की अनुमति अपवाद् मार्ग के रूप में मानी जा सकती है। उसे सामान्य नियम कभी भी नहीं बनाया जा सकता क्योंकि भूतकाल में भी वह एक अपवाद मार्ग ही था। इस प्रकार आचार मार्ग में युगानुरूप परिवर्तन तो किये जो सकते हैं परन्तु उनकी अपनी उपयोगिता होनी चाहिए और उनसे जैन धर्म के शाश्वत मूल्यों पर कोई आंच नहीं आनी चाहिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैन परम्परा में देश और काल के प्रभाव से समय-समय पर अनेक परिवर्तन होते रहे हैं और इन्हीं परिवर्तनों के फलस्वरूप ही जैनधर्म के विभिन्न सम्प्रदाय अस्तित्व में आये हैं। यदि हम उनके इस ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को तटस्थ दृष्टि से समझने का प्रयत्न करेगें तो विभिन्न सम्प्रदायों के प्रति गलतफहमियाँ दूर होंगी और जैन धर्म के मूलधारा में रहे हुए एकत्व का दर्शन कर सकेगें। साम्प्रदायिक सद्भाव और एक दूसरे को सही परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए इस ऐतिहासिक दृष्टिकोण की आज महती आवश्यकता है। आज हम इसे अपनाकर अनेक पारस्परिक विवादों का सहज समाधान पा सकेगें।

जैन इतिहास : अध्ययन विधि एवं मूलस्रोत

समग्र एवं संश्लेषणात्मक अध्ययन की आवश्यकता

भारतीय संस्कृति के सम्यक् ऐतिहासिक अध्ययन के लिए यह आवश्यक है कि उसकी प्रकृति को पूरी तरह से समझ लिया जाये। सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि भारतीय संस्कृति एक संश्लिष्ट संस्कृति है। वस्तुत: कोई भी विकसित संस्कृति संश्लिष्ट संस्कृति ही होती है क्योंकि उसके विकास में अनेक संस्कृतियों का अवदान होता है। भारतीय संस्कृति को हिन्दू, बौद्ध, जैन आदि चारदीवारी में अवरुद्ध करके कभी भी सम्यक् रूप से नही समझा जा सकता है। जिस प्रकार शरीर को खण्ड-खण्ड कर देखने से शरीर की क्रिया- शक्ति को नहीं समझा जा सकता है, ठीक उसी प्रकार भारतीय संस्कृति को खण्डों में विभाजित करके देखने से उसकी आत्मा ही मर जाती है। अध्ययन की दो दृष्टियाँ होती हैं- विश्लेषणात्मक और संश्लेषणात्मक। विश्लेषणात्मक पद्धति तथ्यों को खण्डों में विभाजित करके देखती है, तो संश्लेषणात्मक विधि उसे समग्र रुप से देखती है। भारतीय संस्कृति के इतिहास को समझने के लिए यह आवश्यक है कि इसके विभिन्न घटकों अर्थात् हिन्दू, बौद्ध और जैन परम्पराओं का समन्वित या समग्र रूप में अध्ययन किया जाये। जिस प्रकार एक इंजन की प्रक्रिया को समझने के लिए न केवल उसके विभिन्न घटकों अर्थात् कल-पुर्जो का ज्ञान आवश्यक है, अपितु उनके परस्पर संयोजित स्वरूप को तथा एक अंग की क्रिया के दूसरे अंग पर होने वाले प्रभाव को भी समझना होता है। सत्य तो यह है कि भारतीय इतिहास के शोध के सन्दर्भ में अन्य सहवर्ती परम्पराओं के अध्ययन के बिना भारतीय संस्कृति का समग्र इतिहास प्रस्तुत ही नहीं किया जा सकता।

कोई भी धर्म और संस्कृति शून्य में विकसित नही होती हैं, वे अपने देश-काल तथा अपनी सहवर्ती अन्य परम्पराओं से प्रभावित होकर ही अपना स्वरूप ग्रहण करती हैं। यदि हमें जैन, बौद्ध या हिन्दू किसी भी भारतीय सांस्कृतिक धारा के इतिहास का अध्ययन करना है तो उनके देशकाल और परिवेश को तथा उनकी सहवर्ती परम्पराओं के प्रभाव को सम्यक् प्रकार से समझना होगा। भारत के सांस्कृतिक इतिहास को समझने और उसके प्रामाणिक लेखन के लिए एक समग्र किन्तु देशकाल सापेक्ष दृष्टिकोण को अपनाना आवश्यक है।

ऐतिहासिक अध्ययन के लिए जहाँ एक ओर विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण आवश्यक है, वहीं दूसरी ओर एक समग्र दृष्टिकोण (Holistice-Approach) भी आवश्यक है। भारतीय ऐतिहासिक अध्ययन का यह दुर्भाग्य रहा है कि उसे विभिन्न धर्मों और परम्पराओं का एक घेरे में आबद्ध करके अथवा उसके विभिन्न पक्षों को खण्ड-खण्ड करके देखने का प्रयत्न हुआ है। अपनी आलोचक और विश्लेषणात्मक दृष्टि के कारण हमने एक दूसरे की कमियों को ही अधिक देखा है। मात्र यही नहीं, एक परम्परा में दूसरी परम्परा के इतिहास को और उसके जीवन मूल्यों को भ्रान्त रूप से प्रस्तुत किया गया है।

भारतीय सांस्कृतिक इतिहास के लेखन में पहली भूल तब हुई जब दूसरी परम्पराओं को अपनी परम्परा से निम्न दिखाने के लिए उन्हें गलत ढंग से प्रस्तुत किया गया। प्रत्येक परम्परा की अगली पीढ़ियाँ दूसरी परम्परा के उस गलत प्रस्तुतीकरण को ही आगे बढ़ाती रहीं। दूसरे शब्दों में कहें तो भारतीय संस्कृति और विशेष रूप से भारतीय दर्शन में प्रत्येक पक्ष ने दूसरे पक्ष का विकृत चित्रण ही प्रस्तुत किया। मध्यकालीन दार्शनिक ग्रंथों में इस प्रकार का चित्रण हमें प्रचुरता से उपलब्ध होता है।

सौभाग्य या दुर्भाग्य से जब पाश्चात्य इतिहासकार इस देश में आये और यहाँ के इतिहास का अध्ययन किया तो उन्होंने भी अपनी संस्कृति से भारतीय संस्कृति को निम्न सिद्ध करने के लिए विकृत पक्ष को उभार कर इसकी गरिमा को धूमिल ही किया। फिर भी पाश्चात्य लेखकों में कुछ ऐसे अवश्य हुए हैं जिन्होंने इसको समग्र रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया और एक के ऊपर दूसरी परम्परा के प्रभाव को देखने का भी प्रयत्न किया। किन्तु उन्होंने अपने राजनैतिक स्वार्थों के लिए भारतीय संस्कृति की एक धारा को दूसरी धारा के विरोध में खड़ा कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिया और इस प्रकार भारतीय संस्कृति की एकात्मता को खण्डित किया। यदि हमें भारतीय संस्कृति का प्रामाणिक इतिहास प्रस्तुत करना है तो यह आवश्यक है कि हमारे सांस्कृतिक इतिहास का एक समन्वित और समग्र दृष्टिकोण के आधार पर पुनर्मूल्यांकन हो।

आत्मनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ अध्ययन : जैन दृष्टिकोण

किसी भी व्याख्या या अध्ययन के दो पक्ष होते हैं- १. आत्मनिष्ठ और २. वस्तुनिष्ठ। आत्मनिष्ठ व्याख्या में व्याख्याता का अपना दृष्टिकोण प्रधान होता है और वह अपने दृष्टिकोण के अनुरूप तथ्यों को व्याख्यायित करता है जबकि वस्तुनिष्ठ व्याख्या में तथ्य/घटनाक्रम प्रधान होता है और व्यक्ति निरपेक्ष होकर उसे व्याख्यायित करता है, फिर भी इतना निश्चित है कि व्याख्या व्याख्याता से पूर्णत: निरपेक्ष नहीं हो सकती है। व्याख्या में तथ्य/घटनाक्रम और व्याख्याता-व्यक्ति दोनों ही आवश्यक हैं। अत: कोई भी व्याख्या एकान्त रूप से आत्मनिष्ठ या वस्तुनिष्ठ नहीं हो सकती है। उसके आत्मनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ दोनों ही पक्ष होते हैं।

ऐतिहासिक अध्ययन के लिए यह आवश्यक है कि उसका अध्ययन और ऐतिहासिक तथ्यों का मूल्यांकन वस्तुनिष्ठ आधार पर हो। दूसरे शब्दों में प्रामाणिक इतिहास लेखन, अध्ययन और मूल्यांकन के लिए वस्तुनिष्ठ या तथ्यपरक अनाग्रही दृष्टि आवश्यक है, इसमें किसी प्रकार का वैमत्य नहीं है। इतिहास लेखन, अध्ययन एवं मूल्यांकन सभी व्यक्ति से संबंधित है और व्यक्ति चाहे कितना ही तटस्थ और अनाग्रही क्यों न हो, फिर भी उसमें कहीं न कहीं आत्मनिष्ठ पक्ष का प्रभाव तो रहता ही है। ऐसे व्यक्ति तो विरल ही होते हैं जो निरपेक्ष और तटस्थ हों। दूसरे, इतिहास लेखन घटनाओं की व्याख्या है और इस व्याख्या में आत्मनिष्ठ पक्ष का पूर्ण उपेक्षा भी संभव नहीं है। जैन दार्शनिकों ने अपने अनेकान्त सिद्धान्त के द्वारा यह स्थापित किया था कि प्रत्येक वस्तु, तथ्य और घटना अपने आप में जटिल और बहुआयामी होती है, उसकी व्याख्या अनेक दृष्टिकोणों के आधार पर संभव है। उदाहरण के रूप में ताजमहल का निर्माण एक ऐतिहासिक घटना है किन्तु ताजमहल निर्माता के चरित्र की व्याख्या विभिन्न रुचियों के व्यक्तियों के द्वारा विभिन्न प्रकार से की जा सकती है। किसी के लिए वह कला का उत्कृष्ट प्रेमी हो सकता है तो किसी के लिए वह प्रेयसी के प्रेम में अनन्य आसक्त। कोई उसे अत्यन्त विलासी तो कोई उसे जनशोषक भी कह सकता है। इस प्रकार एक तथ्य की व्याख्या भिन्न-भिन्न प्रकार से हो सकती है।

तथ्यों की जटिलता-एक सत्य

तथ्य की जटिलता और व्याख्या सम्बन्धी विभिन्न दृष्टिकोण की संभावना ये दो ऐसे तथ्य हैं जिन पर ऐतिहासिक मूल्यांकन निर्भर करता है। जिसे आज 'हिस्ट्रीओग्राफी' कहा जाता है वह अन्य कुछ नहीं अपितु ऐतिहासिक तथ्यों की व्याख्या के विभिन्न सिद्धातों के मूल्यांकन का शास्त्र हैं। यह मूल्यांकन विभिन्न दृष्टिकोणों पर आधारित होता है। अत: हम यह कह सकते हैं कि जैनों का अनेकान्त सिद्धान्त ऐतिहासिक मूल्यांकन के क्षेत्र में भी पूर्णत: लागू होता है। हमें उन दृष्टिकोणों या सिद्धान्तों की सापेक्षता को समझना है जिसके आधार पर ऐतिहासिक मूल्यांकन होते हैं। जब तक ऐतिहासिक मूल्यांकन का हार्द नहीं समझ पायेंगे तब तक ऐतिहासिक मूल्यांकन एवं ऐतिहासिक घटनाओं की व्याख्या मात्र किसी एक दृष्टिकोण पर या किसी एक सिद्धान्त पर संभव नही है। इतिहास न तो पूर्ण वस्तुनिष्ठ (Objective) हो सकता है न पूर्ण आत्मनिष्ठ (Subjective) ही। जब भी हमें किसी इतिहास लेखक की किसी घटनाक्रम की व्याख्या का अध्ययन करना होता है तो हमें यह देखना होगा कि उस व्यक्ति का दृष्टिकोण क्या है। वह किन परिवेश और परिस्थितियों में उस व्याख्या को प्रस्तुत कर रहा है।

सहवर्ती परम्परा के प्रभाव और तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता

यदि हम जैन परम्परा के इतिहास को देखें तो हमें स्पष्ट रुप से यह दिखाई देता है कि किस प्रकार अन्य सहवर्ती धाराओं के प्रभाव से उसके ऐतिहासिक चरित्रों में पौराणिकता या अलौकिकता का प्रवेश होता गया और आचार और विचार के क्षेत्र में परिवर्तन आता गया। इसका सबसे अच्छा उदाहरण स्वयं भगवान महावीर का जीवन चरित्र ही है। महावीर के जीवनवृत्त संबंधी सबसे प्राचीन उल्लेख आचारांग के प्रथम एवं द्वितीय श्रुत स्कंध में तथा उसके बाद कल्पसूत्र में उपलब्ध होता है। तत्पश्चात् निर्युक्ति, भाष्य और चूर्णी साहित्य में उनके जीवन का चित्रण मिलता है। इनके बाद जैन पुराणों और चरित्रकाव्यों में उनके जीवनवृत्त का चित्रण किया गया है। यदि हम उन सभी विवरणों को सामने रखकर तुलनात्मक दृष्टि से उनका अध्ययन करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि महावीर के जीवन में किस प्रकार क्रमश: अलौकिकताओं का प्रवेश होता गया। आचारांग के प्रथम श्रुतस्कंध के नवें अध्ययन में महावीर एक कठोर साधक हैं जो कठोर जीवन चर्या और साधना के द्वारा अपनी जीवन-यात्रा को आगे बढ़ाते हैं, किन्तु आचारांग के द्वितीय श्रुत स्कंध से प्रारम्भ होकर कल्पसूत्र और परवर्ती महावीर चरितों में अलौकिकताओं का प्रवेश हो गया। अत: सामान्य रूप से प्राचीन भारतीय इतिहास और विशेष से जैन इतिहास जो हमें पौराणिक ग्रंथों में उपलब्ध होता है, उसके ऐतिहासिक तथ्यों की खोज अत्यन्त सावधानीपूर्वक करना होगा। यह कहना उचित नहीं है कि समस्त पौराणिक आख्यान ऐतिहासिक न होकर मात्र काल्पनिक हैं। दूसरी ओर यह भी सत्य है कि पुराणों और चरितकाव्यों में काल्पनिक अंश इतना अधिक है कि उसमें से ऐतिहासिक तथ्यों को निकाल पाना एक दुरूह कार्य हैं। जो स्थिति हिन्दू पुराणों की है वही स्थिति जैन पुराणों और चरित ग्रंथों की भी है। यह भी सत्य है कि जैन इतिहास के लेखन के लिए हमारे पास जो आधारभूत सामग्री है वह इन्हीं ग्रंथों में निहित है, किन्तु इस सामग्री का उपयोग अत्यन्त सावधानीपूर्वक करना होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन इतिहास के अध्ययन के स्रोत

(अ) जैन आगम, आगमिक व्याख्याओं एवं पुराणों के कथानक

पुराणों के अतिरिक्त आगमिक व्याख्याओं विशेषत: निर्युक्ति, भाष्यों और चूर्णियों में भी अनेक ऐतिहासिक कथानक संकलित हैं किन्तु उनमें भी वही कठिनाई है जो जैन पुराणों में है। ऐतिहासिक कथानक और काल्पनिक कथानक दोनों एक दूसरे से इतने मिश्रित हो गये हैं, उन्हें अलग-अलग करने में अनेक कठिनाईयाँ है। सत्य तो यह है कि एक ही कथानक में ऐतिहासिक और काल्पनिक दोनों ही तत्त्व समाहित हैं और उन्हें एक दूसरे से पृथक् करना एक जटिल समस्या है। फिर भी उनमें जो ऐतिहासिक सामग्री है उसका प्राचीन भारतीय इतिहास की रचना में उपयोग महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक है। आगमिक व्याख्याओं में अधिकांश कथानक व्रत पालन अथवा उसके भंग के कारण हुए दुष्परिणामों को अथवा किसी नियम के संबंध में उत्पन्न हुई आपवादिक स्थिति को स्पष्ट करने के लिए ही दिये गऐ हैं। ऐसे कथानकों में चाणक्य कथानक, भद्रबाहु कथा, कालक कथा, भद्रबाहु द्वितीय और वाराहमिहिर आदि के कथानक ऐसे हैं जिनका ऐतिहासिक महत्त्व है। मरण विभक्ति तथा भगवती आराधना की मूल कथाओं और उन कथाओं को लेकर बने बृहद्आराधना कथाकोश आदि का भारतीय इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व है।

(ब) ऐतिहासिक चरित काव्य एवं स्थविरावलियाँ

इसी प्रकार परवर्ती काल में अनेक ऐतिहासिक चरित काव्य भी लिखे गये हैं, जैसे-त्रिशष्टिशलाका पुरुष चरित, कुमारपाल चरित, कुमारपालभूपाल चरित आदि जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। ऐसे ही जैन आगमों विशेष रूप से कल्पसूत्र और नन्दीसूत्र के प्रारम्भ में जो स्थविरावलियाँ दी गयी हैं वह भी ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व की है। उनमें दिये गये अनेक आचार्यों के नाम तथा उनके गण, कुल, शाखा आदि के उल्लेख मथुरा के अभिलेखों में मिलने से उनका ऐतिहासिक महत्त्व स्पष्ट है।

(स) ग्रन्थ प्रशस्तियाँ

ऐतिहासिक अध्ययन की दृष्टि से ग्रंथ प्रशस्तियों का भी अत्यन्त महत्त्व होता है। उनमें लेखक न केवल अपनी गुरु परम्परा का उल्लेख करता हैं, अपितु अनेक सूचनाएँ भी देता है, जैसे यह ग्रंथ किसके काल में, किसकी प्रेरणा से और कहाँ लिखा गया। यह ठीक है कि ग्रंथ प्रशस्तियों में विस्तृत जीवन परिचय नहीं मिलता किन्तु उनमें संकेत रूप में जो सूचना मिलती है, वह इतिहास लेखन में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है।

(द) पट्टावलियाँ

जैन परम्परा में अनेक पट्टावलियाँ (गुरु-शिष्य परम्परा) भी लिखी गयी हैं। उनमें आचार्यों के संबंध में उल्लेखित कुछ चमत्कारों को छोड़ दें तो शेष सूचनाएँ जैन संघ के इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण और उपयोगी कही जा सकती हैं। इन स्थविरावलियों और पट्टावलियों में न केवल आचार्य परम्परा का निर्देश होता है, अपितु उसमें कुछ काल्पनिक बातों को छोड़कर अनेक आचार्यों के व्यक्तित्व व कृतित्व के संबंध में महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ मिलती हैं। हिमवंत स्थविरावली और नन्दीसंघ पट्टावली जिनकी प्रामाणिकता के संबंध में कुछ प्रश्नचिह्न हैं फिर भी वे जैनधर्म के इतिहास को एक नवीन दिशा देने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही परम्पराओं में आज भी शताधिक ऐसी पट्टावलियाँ उपलब्ध होती हैं, जिनके इतिहास लेखन महत्त्व को हम नहीं नकार सकते। उनका ऐतिहासिक दृष्टि से मूल्यांकन आवश्यक है।

(ई) प्रबन्ध ग्रन्थ

पट्टावलियों के अतिरिक्त अनेक प्रबंध भी (१२वीं से १५वीं शती तक) लिखे गये जिनमें कुछ विशिष्टि जैनाचार्यों के कथानक संकलित हैं। इनमें हेमचन्द्र कृत परिशिष्टपर्व, प्रभाचन्द्र कृत प्रभावकचरित, मेरुतुंग कृत प्रबंधचिन्तामणि, राजशेखर कृत प्रबंधकोश आदि प्रमुख हैं। इन प्रबंधों के कथानकों में भी अनेक स्थलों पर आचार्यों के चरित में अलौकिकता का मिश्रण है। आज उनकी सत्यता का हमारे पास कोई आधार नहीं है फिर भी इन प्रबन्धों में अनेक ऐतिहासिक तथ्य निहित हैं।

(एफ) चैत्यपरिपाटियाँ

स्थविरावलियों, पट्टावलियों, प्रबंधों के अतिरिक्त जैन इतिहास की महत्त्वपूर्ण विद्या चैत्य-परिपाटियाँ या यात्रा विवरण हैं जिनमें विभिन्न तीर्थों के निर्देश तो हैं ही, उनके संबंध में अनेक ऐतिहासिक सत्य भी वर्णित हैं। मरुगुर्जर में हमें सैकड़ों चैत्य परिपाटियाँ (१६वीं से १९वीं शती तक) उपलब्ध होती हैं। जिनमें आचार्यों ने अपने यात्रा विवरणों को संकलित किया है। इसी से मिलती-जुलती एक विधा तीर्थमालाएँ हैं। यह भी चैत्य परिपाटी और यात्रा विवरणों का ही एक रूप है। इसमें लेखक विभिन्न तीर्थों का विवरण देते हुए तीर्थ के अधिनायक की स्तुति करता है। यद्यपि परवर्ती काल की तीर्थमालाओं में मुख्य रूप से तीर्थनायक की प्रतिमा के सौन्दर्य वर्णन को प्रमुखता मिली है किन्तु प्राचीन तीर्थमालाएँ मुख्य रूप से नगर, राजा और वहाँ के सांस्कृतिक परिवेश का भी विवरण देते हैं और इस दृष्टि से वे महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री प्रस्तुत करती हैं। अधिकांश तीर्थमालाएँ १५वीं से १८-१९वीं शताब्दी के मध्य की हैं और इनकी भाषा मुख्यत: मरु-गुर्जर हैं किन्तु कुछ तीर्थमालाएँ प्राचीन भी हैं। इसी क्रम में जैनाचार्यों ने अनेक नगर वर्णन भी लिखे हैं, जैसे-नगरकोट कांगडा वर्णन। नगर वर्णनों संबंधी इन रचनाओं में न केवल नगर का नाम है अपितु उनकी विशेषताएँ तथा उन नगरों से संबंधित उस काल के अनेक ऐतिहासिक वर्णन भी निहित हैं। चैत्य परिपाटियों और तीर्थमालाओं की एक विशेषता यह होती है कि वे उस नगर या तीर्थ के संबंध में पूरा विवरण देती हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(जी) विज्ञप्ति पत्र

एक अन्य विधा जिसमें इतिहास संबंधी सामग्री व नगर-वर्णन दोनों ही होते हैं वे विज्ञप्ति पत्र कहे जाते हैं। विज्ञप्ति पत्र वस्तुत: एक प्रकार के विनति पत्र हैं जिसमें किसी आचार्य विशेष से उनके नगर में चार्तुमास करने का अनुरोध किया जाता है। ये पत्र इतिहास के साथ ही साथ कला के भी अनुपम भंडार होते हैं। इसमें जहाँ एक ओर आचार्य की प्रशंसा और महत्त्व का वर्णन होता है, वहीं दूसरी ओर उस नगर की विशेषताओं के साथ-साथ नगर निवासियों के चरित्र का भी उल्लेख होता है। लगभग १५वीं शती से प्रारम्भ होकर १६-१७वीं शती तक अनेक विज्ञप्ति पत्र आज भी उपलब्ध हैं। ये विज्ञाप्ति पत्र जन्मपत्री के समान लम्बे आकार के होते हैं जिसमें नगर के महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के सुन्दर चित्र भी होते हैं, जिससे इनका कलात्मक महत्त्व भी बढ़ जाता है।

इस प्रकार से हम यह कह सकते हैं कि आगम, आगमिक व्याख्यायें, स्वतंत्र ग्रंथों की प्रशस्तियाँ, धार्मिक कथानक, चरित ग्रंथ, प्रबंध साहित्य, पट्टावलियाँ, स्थविरावलियाँ, चैत्य परिपाटियाँ, तीर्थमालाएँ, नगर वर्णन और विज्ञप्ति पत्र आदि सब मिलकर सामान्य रूप से भारतीय इतिहास विशेषत: जैन इतिहास के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान करते हैं।

(एच) अभिलेख

इन साहित्यिक स्रोतों के अतिरिक्त अभिलेखीय स्रोत भी जैन इतिहास के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। इनमें परिवर्तन-संशोधन की गुंजाईश कम होने तथा प्राय: समकालीन घटनाओं का उल्लेख होने से उनकी प्रामाणिकता में भी सन्देह का अवसर कम होता है। जैन अभिलेख विभिन्न उपादानों पर उत्कीर्ण मिलते हैं जैसे-शिला, स्तम्भ, गुफा, धातु प्रतिमा, स्मारक, शय्यापट्ट, ताम्रपट्ट आदि पर। ये अभिलेख मुख्यतया दो प्रकार के हैं- १. राजनीतिक और २. धार्मिक। राजनीतिक या शासन पत्रों के रूप में जो अभिलेख हैं वे प्राय: प्रशस्तियों के रूप में हैं जिसमें राजाओं की विरूदावलियाँ, सामरिक विजय, वंश परिचय आदि होता है। धार्मिक अभिलखों में अनेक जैन जातियों के सामाजिक इतिहास, जैनाचार्यों के संघ, गण, गच्छ आदि से संबंधित उल्लेख होते हैं।

जैन अभिलेखों की भाषा प्राकृत, संस्कृत, कन्नड़ मिश्रित संस्कृत, कन्नड़, तमिल, गुजराती और पुरानी हिन्दी हैं। दक्षिण के कुछ लेख तमिल में तथा अधिकांश कन्नड़ मिश्रित संस्कृत में हैं जिनमें ऐहोल प्रशस्ति, राष्ट्रकूट गोविन्द का मन्ने से प्राप्त लेख, अमोघवर्ष का कोन्नर शिलालेख आदि मुख्य हैं।

प्राकृत भाषा के अभिलेखों में अजमेर से ३२ मील दूर बारली (बड़ली) नामक स्थान से प्राप्त एक जैन लेख जो एक पाषाण स्तम्भ पर ४ पक्तियों में खुदा हैं, सबसे प्राचीन बताया गया है। इस लेख की लिपि को स्व गौरी शंकर हीराचन्द ओझा ने अशोक से पूर्व का माना है। ई०पू० ३-२ शती से जैन अभिलेख बहुतायत से मिलते हैं। मात्र मथुरा से ही लगभग ई०पू० २शती से लेकर १२वीं शती तक के २०० से भी अधिक अभिलेख मिले हैं। मथुरा से प्राप्त ये अभिलेख प्राकृत, संस्कृत मिश्रित प्राकृत में तथा संस्कृत में हैं। इन अभिलेखों का विशेष महत्त्व इसलिए भी है क्योंकि इनकी पुष्टि कल्पसूत्र और नन्दीसूत्र की स्थविरावलियों से भी होता है। इससे पूर्व कलिंग नरेश खारवेल का उड़ीसा के हाथी गुंफा से प्राप्त शिलालेख एक ऐसा अभिलेख है जो खारवेल के राजनीतिक क्रिया-कलापों पर प्रकाश डालने वाला एक मात्र स्रोत है। यह अभिलेख न केवल ई०पू० प्रथम-द्वितीय शती के जैन संघ के इतिहास को प्रस्तुत करता है, अपितु खारवेल के राज्यकाल व उसके प्रत्येक वर्ष के कार्यों का भी विवरण देता है। अत: यह सामान्य रूप से भारतीय इतिहास और विशेष रूप से जैन इतिहास की महत्त्वपूर्ण थाती है।

परवर्ती अभिलेख विशेषत: ५-६वीं शती के दक्षिण से प्राप्त अभिलेखों में चालुक्य-पुलकेशी द्वितीय का रविकीर्ति रचित शिलालेख (६३४ ई०), हथुंडी के धवल राष्ट्रकूट का बीजापुर लेख (९९७ ई०) आदि प्रमुख हैं। दक्षिण से प्राप्त अभिलेखों की विशेषता यह है कि उनमें आचार्यों की गुरु परम्परा, कुल, गच्छ आदि का विवरण तो मिलता ही है साथ ही अभिलेख लिखवाने वाले व्यक्तियों व राजाओं के संबंध में भी सूचना मिलती है।

अन्य प्रमुख अभिलेख कक्क का घटियाल प्रस्तर लेख (वि०सं० ९१८), कुमारपाल की बडनगर प्रशस्ति (वि०सं० १२०८), विक्रमसिंह कछवाहा का दूबकुण्ड लेख (१०८८ ई०), जयमंगलसूरि रचित चाचिंग-चाहमान का सुन्धा पर्वत अभिलेख आदि हैं जिनसे धार्मिक इतिहास के साथ ही साथ राजनीतिक व सांस्कृतिक इतिहास भी ज्ञात होता है।

इस प्रकार जैन साहित्यिक व अभिलेखीय दोनों ही स्रोतों से महत्त्वपूर्ण सामग्री प्राप्त होती है। हमें यह समझ लेना चाहिये कि जैन विद्वानों, रचनाकारों ने जैन इतिहास के लिए हमें महत्त्वपूर्ण अवदान किया है, जिसका सम्यक् मूल्यांकन और उपयोग अपेक्षित है। हम इतिहासविदों से अनुरोध करते हैं कि वे अपने अध्ययन व भारतीय इतिहास की नवीन व्याख्या के लिए इन स्रोतों का भरपूर उपयोग करें ताकि कुछ नवीन तथ्य सामने आ सकें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org